COHERENCE – The Multidisciplinary Research Journal
Volume No: 17, Issue No: 1, Year: 2026 (January-June)
PP: 333-339
ISSN: 0976 -5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' में नारी चित्रण

डॉ ममता पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग, म. का. सू महाविद्यालय चंदौना, दरभंगा (बिहार)

सारांश

महाकवि कालिदास का 'विक्रमोर्वशीयम्' दैवी अप्सरा उर्वशी और मर्त्य राजा पुरूरवा के प्रेम का नाटक है, किंतु इसकी साहित्यिक शक्ति केवल प्रणय-कथा में निहित नहीं है। यह नाटक स्त्री की इच्छा, कलात्मक व्यक्तित्व, देह-सौंदर्य, ईर्ष्या, मैत्री, वैवाहिक अधिकार, मातृत्व और सामाजिक अनुशासन के परस्पर तनावों को अत्यंत सूक्ष्मता से रूपायित करता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में उर्वशी को निष्क्रिय सौंदर्य-वस्तु के स्थान पर प्रेम का चयन करने वाली कलाकार, स्वर्गीय सत्ता से नियंत्रित स्त्री, विरह से व्यथित प्रेयसी और वियोग-भीत माता के रूप में पढ़ा गया है। साथ ही रानी औशीनरी के आत्मसम्मान, दाम्पत्य-पीड़ा और 'प्रियानुप्रसादन-व्रत' की आलोचनात्मक व्याख्या की गई है। चित्रलेखा, निपुणिका, सत्यवती तथा अप्सरा-सहचरियों की उपस्थिति स्त्री-सख्य और देखभाल के वैकल्पिक संसार को उद्घाटित करती है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कालिदास स्त्री-पात्रों को भावनात्मक और नाटकीय सक्रियता देते हैं, यद्यपि उनके निर्णय अंततः इन्द्र, भरत, राजसत्ता, वंश और पतिव्रत-व्यवस्था से सीमित रहते हैं। इसीलिए 'विक्रमोर्वशीयम्' का नारी-चित्रण आदर्शीकरण और यथार्थ, स्वत्व और मर्यादा, प्रेम और अधिकार, कला और अनुशासन का जटिल समन्वय है।

मुख्य शब्द— कालिदास, विक्रमोर्वशीयम्, उर्वशी, औशीनरी, नारी-चित्रण, स्त्री-सख्य, मातृत्व, संस्कृत नाटक।

प्रस्तावना

'विक्रमोर्वशीयम्' कालिदास के तीन उपलब्ध नाटकों में वह रचना है जिसमें प्रेम की असमान संरचना—देवी और मनुष्य, स्वर्ग और पृथ्वी, अमरता और नश्वरता—नाटकीय क्रिया का मूल आधार बनती है। पाँच अंकों में विन्यस्त यह नाटक पुरूरवा की वीरता से आरम्भ होकर उर्वशी के प्रेम, शाप, मिलन, लता-रूपान्तरण, मातृत्व और अंततः स्थायी दाम्पत्य तक पहुँचता है [1]। शीर्षक का आशय केवल 'वीरता से प्राप्त उर्वशी' नहीं; उसमें यह प्रश्न भी निहित है कि कथा में वास्तव में किसे कौन प्राप्त करता है। राजा उर्वशी को युद्ध में बचाता है, पर उर्वशी का प्रेम ही उसके राजकीय व्यक्तित्व को मानवीय गहराई देता है।

इस आख्यान का प्राचीनतम काव्यरूप ऋग्वेद के पुरूरवा-उर्वशी संवाद में मिलता है [2] और उसका विस्तृत कथात्मक रूप शतपथ ब्राह्मण में विकसित हुआ [3]। जे. सी. राइट ने वैदिक संवाद को केवल किसी लोककथा का असंगत अवशेष मानने के बजाय उसकी भाषिक, मिथकीय और अनुष्ठानिक जटिलता पर बल दिया है [4]। आर. सी. गौर ने भी इस कथा-परम्परा को सूर्य-उषा, मनुष्य-अप्सरा और प्रेम-वियोग के बहुस्तरीय अर्थों से जोड़कर देखा है [5]। कालिदास की मौलिकता इस प्राचीन सामग्री को पुनः कहने में नहीं, उसे नाटकीय मनोविज्ञान और स्त्री-अनुभव की नई अवस्थाएँ देने में है।

वेलचेरु नारायण राव और डेविड शुल्मन के शब्दों का हिंदी आशय है कि कालिदास ने इस आख्यान में 'एक देवी को पूर्णतः और जोखिमपूर्ण ढंग से मनुष्य बनते हुए दिखाया है, क्योंकि प्रेम की गहराइयों और जटिलताओं का अनुभव मनुष्य ही कर सकता है' [6]। यह कथन उर्वशी के चरित्र की केंद्रीय गति को उद्घाटित करता है। वह स्वर्ग से पृथ्वी पर केवल शापवश नहीं आती; प्रेम, ईर्ष्या, भय, मातृत्व और वियोग के कारण क्रमशः मानवीय होती जाती है।

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976 -5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

बारबरा स्टोलर मिलर ने कालिदास के नाट्य-संसार में स्मृति, अभिज्ञान और प्रेम के संबंध को विशेष महत्त्व दिया है [7]। के. कृष्णमूर्ति कालिदास की कला में प्रकृति और मानव-भाव के समन्वय को उनकी विशिष्ट उपलब्धि मानते हैं [8], जबकि ए. बी. कीथ ने 'विक्रमोर्वशीयम्' की संरचना में गीतात्मकता और चौथे अंक के विलक्षण प्रयोग को रेखांकित किया है [9]। इन दृष्टियों के आधार पर नारी-चित्रण का अध्ययन केवल पात्र-सूची नहीं, बल्कि कथानक, भाषा, अभिनय, प्रतीक और सत्ता-संबंधों का संयुक्त विवेचन है।

अध्ययन का उद्देश्य और पद्धति

इस शोध-पत्र का उद्देश्य 'विक्रमोर्वशीयम्' में उपस्थित प्रमुख स्त्री-पात्रों की नाटकीय भूमिका, वैयक्तिक इच्छा, संबंध-बोध और सामाजिक सीमाओं का विश्लेषण करना है। अध्ययन की पद्धति पाठालोचनात्मक, तुलनात्मक और व्याख्यात्मक है। मूल संस्कृत तथा प्राकृत संवादों, अंक-विन्यास, श्लोकों और नाटकीय परिस्थितियों को आधार बनाया गया है। ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण की उर्वशी की तुलना कालिदास की उर्वशी से की गई है; साथ ही औशीनरी, चित्रलेखा, निपुणिका और सत्यवती के माध्यम से स्त्री-अनुभव की बहुवचनात्मकता को समझा गया है। नाटक को आधुनिक संज्ञाओं में बंद करने के बजाय उसके भीतर सक्रिय स्वत्व और मर्यादा के अंतर्द्वंद्व को सामने रखना इस अध्ययन का मूल आग्रह है।

वैदिक उर्वशी से कालिदास की उर्वशी तक

ऋग्वेद का संवाद उस क्षण से आरम्भ होता है जब संबंध टूट चुका है और पुरूरवा उर्वशी को लौटने के लिए मनाता है। वैदिक उर्वशी अपनी दूरी और असाध्य स्वतंत्रता को स्पष्ट भाषा में व्यक्त करती है। उसका कथन पुरुष की याचना के सामने स्त्री की दृढ़ अस्वीकृति का प्राचीन उदाहरण है:

> किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव।
>
> पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि॥
>
> अर्थ—इन बातों से अब मैं क्या करूँ? मैं उषाओं की प्रथम किरण की भाँति आगे निकल चुकी हूँ। हे पुरूरवा, अपने घर लौट जाओ; मैं वायु की भाँति दुर्लभ हूँ। [2, मंडल 10, सूक्त 95, मंत्र 2]

यहाँ उर्वशी वियोग का कारण मात्र नहीं, अपनी शर्तों पर बोलने वाली सत्ता है। शतपथ ब्राह्मण इस संवाद को विवाह-शर्त, मेषों की रक्षा, नग्नता के निषेध और गन्धर्वलोक की प्राप्ति से जोड़ता है [3]। कालिदास इन कठोर शर्तों को त्याग देते हैं। उनकी उर्वशी पुरूरवा से विमुख होने वाली 'अन्यलोक की पत्नी' नहीं, पृथ्वी पर प्रेम को पूर्ण करना चाहने वाली नायिका है। फिर भी उसका जीवन स्वाधीन नहीं हो जाता; भरत का शाप, इन्द्र की अनुमति और कुमारवन का निषेध उसकी गति निर्धारित करते हैं। इस प्रकार कालिदास वैदिक उर्वशी की स्पष्ट स्वायत्तता को भावात्मक आत्मसमर्पण में बदलते हैं, पर उसके भीतर इच्छा, असहमति और मान की ऊर्जा सुरक्षित रखते हैं।

बारबरा फास लीवी ने उर्वशी-पुरूरवा आख्यान को विश्वव्यापी 'अन्यलोक की पत्नी' अथवा 'हंस-कन्या' कथा-रूप से संबद्ध करते हुए स्त्री, विवाह और वापसी के प्रश्नों पर विचार किया है [10]। कालिदास का संस्करण इस रूपक को उलट देता है: नायिका अन्यलोक लौटने की आकांक्षा से अधिक पृथ्वी पर रहने की इच्छा रखती है। उसका संकट यह है कि स्वर्ग उसे वापस बुलाता है और मनुष्यलोक उसे पत्नी तथा माता की भूमिकाओं में स्थिर करना चाहता है। दोनों लोकों के बीच उसकी देह और समय पर दूसरों का अधिकार है।

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976 -5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

उर्वशी: सौंदर्य-वस्तु से अनुभवशील व्यक्तित्व तक

प्रथम अंक में उर्वशी का प्रवेश संकटग्रस्त स्त्री के रूप में होता है। केशी दानव द्वारा उसका अपहरण और पुरूरवा द्वारा उद्धार शास्त्रीय नायक की वीरता स्थापित करता है, किंतु दृश्य का भावात्मक केंद्र उर्वशी की चेतना है। मूर्छा से जागते ही वह जिस पुरुष को देखती है, उसी के प्रति आकृष्ट होती है; विदा के समय लता में वैजयन्ती-माला उलझने का बहाना करके पीछे देखना उसकी इच्छा का सूक्ष्म अभिनय है [1]। वह प्रत्यक्ष प्रणय-घोषणा नहीं करती, फिर भी देह-भाषा, दृष्टि और विलम्ब के माध्यम से अपनी रुचि प्रकट करती है। कालिदास यहाँ लज्जा को निष्क्रियता नहीं बनाते; वह सामाजिक-सौंदर्यशास्त्र के भीतर इच्छा की सांकेतिक भाषा है।

कलाकार उर्वशी: अभिनय, वाणी और अनुशासन

उर्वशी देवसभा की अप्सरा होने के साथ प्रशिक्षित अभिनेत्री और नर्तकी है। लक्ष्मी-स्वयंवर के अभिनय में मेनका के प्रश्न पर उसे 'पुरुषोत्तम' कहना चाहिए, किंतु उसके मुख से 'पुरूरवस्' निकल जाता है—'पुरुषोत्तम इति भणितव्ये पुरूरवसीति निर्गता वाणी' [1, अंक 3]। यह केवल मंचीय भूल नहीं; भूमिका और निजी अस्तित्व के बीच का विद्रोही क्षण है। देवसभा उसे लक्ष्मी की नियत वाणी बोलने को कहती है, पर उसका अंतःकरण अपना प्रिय नाम बोलता है। स्त्री की निजी कामना सार्वजनिक कला में प्रवेश करती है और पुरुष-नियंत्रित नाट्य-अनुशासन को भंग कर देती है।

भरत का शाप इस वाणी-स्खलन को दण्डित करता है, जबकि इन्द्र दण्ड को सीमित कर उर्वशी को पुरूरवा के साथ रहने की अनुमति देता है, जब तक राजा उनके पुत्र का मुख न देख ले [1]। यहाँ स्त्री की इच्छा पर दो पुरुष-सत्ताएँ निर्णय करती हैं—गुरु दण्ड देता है और देवाधिपति उसकी सीमा तय करता है। तथापि घटना का मूल कारण उर्वशी की निर्भीक भाव-सत्यता है। राम वी. बक्शी ने कालिदास के नाटकों में अनुष्ठान और सामंजस्य की भूमिका पर बल दिया है [11]; 'विक्रमोर्वशीयम्' में भी शाप, व्रत और अभिषेक अंततः संबंधों को सामाजिक स्वीकृति देते हैं, किंतु इनके बीच स्त्री की सहज वाणी व्यवस्था की कठोरता उजागर करती है।

प्रेम-पत्र और स्त्री-वाणी का आत्मप्रकाश

द्वितीय अंक का भूर्जपत्र प्रसंग उर्वशी की सक्रियता का सबसे स्पष्ट प्रमाण है। पुरूरवा यह मान बैठता है कि उर्वशी उसके अनुराग से अनभिज्ञ अथवा उदासीन है। तिरस्करिणी विद्या से अदृश्य होकर उसकी व्यथा सुनती उर्वशी स्वयं पत्र लिखती है और वायु के सहारे उसके पास भेजती है। पत्र का प्राकृत स्वर उसकी अंतरंगता, संकोच और शारीरिक विरह—तीनों को एक साथ व्यक्त करता है:

> सामिअ संभाविदआ जह अहं तए अमुणिआ
>
> तह अ अणुरत्तस्स मुहअ एअमेअ तुह।
>
> णवरि अ मे ललिअपारिआअसअणिज्जम्मि
>
> होन्ति सुहा णंदणवणवाआ वि सिहि व्व सरीरे॥
>
> संस्कृत-छाया—स्वामिन् सम्भाविता यथाहं त्वयाज्ञात्री, तथा चानुरक्तस्य सुभग एवमेव तव। अनन्तरं च मे ललितपारिजातशयनीये भवन्ति सुखा नन्दनवनवाता अपि शिखीव शरीरे॥ [1, अंक 2, श्लोक 12]

पत्र का आशय है कि वह राजा की पीड़ा से अनजान नहीं; स्वयं अनुरक्त होने के कारण नन्दनवन की शीतल वायु भी उसके शरीर को अग्नि की तरह तपाती है। यहाँ उर्वशी प्रेम की प्रतीक्षा नहीं करती, बल्कि संप्रेषण का माध्यम चुनती और परस्परता की पुष्टि करती है। प्राकृत का प्रयोग भी महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत नाट्य-परम्परा में स्त्री की भाषा प्रायः प्राकृत है, पर यही भाषा भाव की सर्वाधिक स्वाभाविक

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976 -5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

अभिव्यक्ति बनती है। राजकीय संस्कृत की अपेक्षा उर्वशी का प्राकृत पत्र अधिक निजी, स्पर्शशील और आत्मस्वीकृत है।

इस पत्र की नाटकीय यात्रा स्त्री-अनुभव की असुरक्षा भी दिखाती है। विदूषक के हाथ से पत्र गिरता है, औशीनरी उसे पढ़ लेती है और उर्वशी की गोपनीय वाणी राजमहल के दाम्पत्य-संघर्ष का प्रमाण बन जाती है। पत्र स्त्री की एजेंसी है, किंतु पुरुष की असावधानी से वह उसके विरुद्ध सामाजिक साक्ष्य बन सकता है। कालिदास इस छोटे उपकरण के माध्यम से प्रेम, गोपनीयता, स्त्री-स्पर्धा और राजकीय विवाह की पूरी संरचना खोल देते हैं।

ईर्ष्या, मान और लता-रूपान्तरण

उर्वशी को केवल समर्पित प्रेयसी मानना चौथे अंक के अर्थ को संकुचित कर देता है। गन्धमादन पर पुरूरवा की दृष्टि विद्याधर-कन्या उदयवती की ओर जाती है। उर्वशी इसे प्रेम की अवमानना मानकर क्रुद्ध होती है, राजा के अनुनय की उपेक्षा करती है और स्त्रियों के लिए निषिद्ध कुमारवन में प्रवेश कर जाती है; वहाँ वह लता बन जाती है [1]। उसकी ईर्ष्या को कवि हास्यास्पद दोष नहीं बनाते। यह उस स्त्री का अधिकार-बोध है जिसने स्वर्ग छोड़ा, शाप सहा और अपने प्रेम की अनन्यता चाही। उर्वशी का 'मान' संबंध में समान प्रत्युत्तर की माँग है।

लता-रूपान्तरण बहुअर्थी प्रतीक है। कालिदास की कविता में स्त्री और लता का साम्य सौंदर्य का परिचित अलंकार है, किंतु यहाँ उपमा वस्तुगत घटना बन जाती है। बोलती, चलती और निर्णय करती स्त्री वनस्पति में बदलकर मौन तथा स्थिर हो जाती है। कुमारवन का निषेध स्त्री-देह पर देव-नियम का नियंत्रण है; क्रोध में सीमा लाँघने का दण्ड उसकी वाणी और मानवीय आकृति दोनों हर लेता है। दूसरी ओर संगमनीय मणि के स्पर्श से पुनरुद्धार बताता है कि पहचान केवल दृष्टि से नहीं, प्रेमपूर्ण स्पर्श और स्मरण से लौटती है। चौथे अंक का व्यापक प्रकृति-संवाद पुरूरवा की पीड़ा व्यक्त करता है, पर उसकी अनुपस्थित केंद्र-शक्ति उर्वशी ही है।

मातृत्व: प्रेम, गोपन और वियोग का निर्णय

पाँचवें अंक में आयु का आगमन उर्वशी को प्रेयसी से माता के रूप में सामने लाता है। पुत्र को जन्म के तुरंत बाद च्यवन के आश्रम में तापसी सत्यवती के संरक्षण में रखना उसका अत्यंत पीड़ादायक निर्णय है। कारण यह है कि पुरूरवा के पुत्र-दर्शन के साथ ही इन्द्र द्वारा निर्धारित पृथ्वी-निवास की अवधि समाप्त हो जाएगी। वह पुत्र से दूर रहती है ताकि प्रिय के साथ कुछ अधिक समय रह सके। यह निर्णय मातृत्व के अभाव का नहीं, दो असह्य वियोगों में से एक को स्थगित करने की विवश चेष्टा है।

> यदा मम स प्रियवयस्यस्त्वयि समुत्पन्नसुतस्य मुखं प्रेक्षते तदा मम समीपं त्वया आगन्तव्यमिति। ततो मया महाराजवियोगभीरुतया जातमात्र एव विद्यागमनिमित्तं च भगवतश्च्यवनस्य आश्रमपदे एष पुत्रक आर्यायाः सत्यवत्याः हस्ते आत्मना निक्षिप्तः। अद्य पुनः पितुराराधनसमर्थः संवृत्त इति कृत्वा निर्यातित एष दीर्घायुरायुः। एतावान् मम महाराजेन सह संवासः। [1, अंक 5]

इस स्वीकारोक्ति में उर्वशी का मातृत्व तीन रूपों में खुलता है—गोपन, त्याग और भय। वह पुत्र को नष्ट नहीं करती, बल्कि सुरक्षित आश्रम, सक्षम संरक्षिका और संस्कारित पालन का चयन करती है। सत्यवती तथा च्यवन का आश्रम जैविक माता से बाहर देखभाल की सामाजिक व्यवस्था प्रस्तुत करते हैं। किंतु निर्णय की त्रासदी बनी रहती है: उर्वशी को प्रेमिका बने रहने के लिए सार्वजनिक मातृत्व स्थगित करना पड़ा। राजवंश के लिए आयु उत्तराधिकारी है, पुरूरवा के लिए वात्सल्य का आलम्बन, पर उर्वशी के लिए वह मिलन की सीमा का जीवित संकेत है।

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976 -5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

अंत में नारद इन्द्र का आदेश सुनाते हैं कि उर्वशी राजा के जीवनपर्यन्त उसकी सहधर्मचारिणी रहेगी [1]। इससे दम्पती का वियोग टलता है और पुत्र का अभिषेक संभव होता है। सुखांत नाटकीय न्याय प्रदान करता है, पर यह भी ध्यान देने योग्य है कि समाधान उर्वशी के निर्णय से नहीं, इन्द्र की नई अनुमति से आता है। उसकी इच्छा स्वीकार होती है, अधिकार के रूप में नहीं, अनुग्रह के रूप में। कालिदास की करुण दृष्टि स्त्री की पीड़ा को गहरा बनाती है, किंतु सामाजिक-दैवी सत्ता को पूरी तरह चुनौती नहीं देती।

औशीनरी: आहत दाम्पत्य, आत्मसम्मान और उदारता

काशिराज-दुहिता औशीनरी नाटक की दूसरी महत्त्वपूर्ण स्त्री है। उसे केवल ईर्ष्यालु पटरानी कहना अनुचित होगा। पुरूरवा के उर्वशी-प्रेम की सूचना मिलने पर वह निपुणिका से सत्य जानने का प्रयास करती है; भूर्जपत्र हाथ लगने पर उसके पास ठोस प्रमाण आ जाता है। राजा पत्र को राजकीय दस्तावेज बताकर छिपाना चाहता है, पर औशीनरी व्यंग्यपूर्वक उसके 'सौभाग्य' को पहचानती है [1]। उसकी जिज्ञासा दाम्पत्य में पारदर्शिता और अपने अधिकार की माँग है।

> नास्ति भवतोऽपराधः। अहमेवापराद्धा या प्रतिकूलदर्शना भूत्वा अग्रतस्तिष्ठामि। इतो गमिष्यामि। [1, अंक 2]

ऊपरी अर्थ में रानी स्वयं को दोष देती है; गहरे अर्थ में यह तीखा व्यंग्य है—यदि पति का परस्त्री-प्रेम अपराध नहीं, तो उसकी उपस्थिति ही मानो अपराध है। इस वाक्य में क्रोध, आहत गौरव और राजमहल की विवश मर्यादा साथ उपस्थित हैं। वह तत्काल अपमानजनक विवाद नहीं करती, पर मौन समर्पण भी नहीं करती; राजा के चरण-प्रणाम और अनुनय के बावजूद चली जाती है। कालिदास उसे बोलने, तर्क करने और दूरी बनाने का अवसर देते हैं।

तृतीय अंक में औशीनरी 'प्रियानुप्रसादन-व्रत' करती है। चन्द्र और रोहिणी को साक्षी बनाकर वह पति को उस स्त्री के साथ निर्बाध रहने की अनुमति देती है जिसे वह चाहे और जो उसके मिलन की इच्छुक हो:

> एषा देवतामिथुनं रोहिणी-मृगलाञ्छनं साक्षीकृत्य आर्यपुत्रमनुप्रसादयामि। अद्यप्रभृति आर्यपुत्रो यां स्त्रियं कामयते, या आर्यपुत्रसमागमप्रणयिनी, तया सहाप्रतिबन्धेन वर्तितव्यम्। [1, अंक 3]

इस घोषणा में औशीनरी की गरिमा और व्यवस्था की असमानता दोनों हैं। वह प्रतिद्वंद्वी स्त्री को नष्ट करने के बजाय उसके अस्तित्व को स्वीकारती है; उर्वशी भी इस उदारता को सुनकर रानी के प्रति सम्मान व्यक्त करती है। किंतु पति की बहुपत्नी इच्छा को वैध बनाने का नैतिक श्रम पत्नी से ही कराया जाता है। उसका त्याग धार्मिक व्रत बनते ही सामाजिक आदर्श में बदल जाता है। इसलिए यह दृश्य स्त्री-उदारता का महिमामंडन भर नहीं, उस संरचना का उद्घाटन भी है जिसमें पुरुष की इच्छा और स्त्री का संयम अलग-अलग मानकों पर आंके जाते हैं।

औशीनरी और उर्वशी प्रत्यक्ष शत्रु नहीं बनतीं। दोनों का साझा संकट पुरुष-केंद्रित सत्ता है, यद्यपि उनकी सामाजिक स्थितियाँ भिन्न हैं। उर्वशी स्वर्ग की कलाकार है पर पृथ्वी पर वैधानिक स्थान चाहती है; औशीनरी वैधानिक रानी है पर पति की भावात्मक प्राथमिकता खोती है। एक को प्रेम मिला है, अधिकार नहीं; दूसरी को अधिकार मिला है, प्रेम की अनन्यता नहीं। कालिदास इन दोनों अधूरेपन को साथ रखकर स्त्री-अनुभव की जटिलता रचते हैं।

चित्रलेखा, निपुणिका और सत्यवती: स्त्री-सख्य का संसार

चित्रलेखा उर्वशी की सहेली भर नहीं, उसकी दूत, सलाहकार और भावानुवादक है। प्रथम अंक में वह उर्वशी के साथ अपहृत होती है; बाद में तिरस्करिणी विद्या के माध्यम से उसे राजा तक लाती, उसके

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976 -5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

संकोच को समझती और संदेश को स्पष्ट करती है। उर्वशी के मिलन के पश्चात् वह राजा से अपनी सखी को स्वर्ग-वियोग न होने देने की प्रार्थना करती है [1]। यह स्त्री-सख्य नायिका को अकेले प्रेम-संघर्ष से बचाता है। चित्रलेखा के बिना उर्वशी की इच्छा कई बार अव्यक्त रह जाती।

निपुणिका औशीनरी की विश्वासपात्र दासी है। वह समाचार जुटाती है, रानी की भाव-दशा समझती है और राजकीय गोपनीयता के भीतर स्त्री की सूचना-व्यवस्था बनती है। सत्यवती का योगदान और अधिक मौन, किंतु निर्णायक है: वह आयु का पालन करती है, उसे शिक्षा-संस्कार दिलाती है और उचित समय पर पिता के पास पहुँचाती है। अप्सराएँ—मेनका, रम्भा, सहजन्या—भी उर्वशी के स्वर्गीय समुदाय की स्मृति हैं। इन गौण स्त्रियों के माध्यम से नाटक बताता है कि प्रेम और मातृत्व का निर्वाह अकेली नायिका नहीं करती; उसके पीछे स्त्री-सहयोग, देखभाल और गोपनीय श्रम का पूरा तंत्र है।

भाषा, देह और सत्ता

नाटक में उच्च पुरुष पात्रों की संस्कृत और अनेक स्त्री-पात्रों की प्राकृत भाषा सामाजिक विभाजन को अंकित करती है। किंतु नाटकीय प्रभाव में प्राकृत ही प्रेम, मान, भय और घरेलू पीड़ा की निकटतम भाषा बनती है। उर्वशी का पत्र, औशीनरी का व्यंग्य और चित्रलेखा की आत्मीयता प्राकृत में अधिक जीवित लगते हैं। अतः भाषिक भेद को केवल ऊँच-नीच कहना पर्याप्त नहीं; वह सत्ता का चिह्न भी है और भावात्मक प्रतिरोध का माध्यम भी। स्त्रियाँ उसी भाषा में अपनी सच्चाई कहती हैं जिसे दरबार औपचारिक प्राधिकार की भाषा नहीं मानता।

देह-वर्णन में पुरुष-दृष्टि बार-बार उपस्थित है—उर्वशी की कटि, स्तन, नेत्र, चाल और स्पर्श राजा के आकर्षण का विषय बनते हैं। फिर भी देह केवल उपभोग की वस्तु नहीं रहती। वही देह अभिनय में अनुशासित होती है, विरह में तपती है, ईर्ष्या में कुमारवन की सीमा लाँघती है, लता बनकर मौन होती है, मातृत्व धारण करती है और अंततः दैवी आदेश का समय-सूचक बनती है। कालिदास की उपलब्धि यह है कि सौंदर्य को भावात्मक कथा से जोड़ देते हैं; उनकी सीमा यह है कि स्त्री की मान्यता बार-बार राजा, गुरु, देवता और पुत्र से संबंध द्वारा निर्धारित होती है।

समालोचनात्मक मूल्यांकन

'विक्रमोर्वशीयम्' में नारी-चित्रण का सबसे प्रभावशाली पक्ष उसकी भाव-जटिलता है। उर्वशी प्रेम करती है, पत्र लिखती है, अभिनय में निजी सत्य बोलती है, ईर्ष्या करती है, सीमा लाँघती है, पुत्र को सुरक्षित रखती है और संभावित वियोग पर रोती है। औशीनरी प्रमाण खोजती है, पति से प्रश्न करती है, अपमान पर हट जाती है और अंततः अपनी शर्तों में उदारता की घोषणा करती है। इन क्रियाओं से दोनों स्त्रियाँ कथानक की कारण-शक्ति बनती हैं। वे केवल पुरूरवा के चरित्र को सजाने वाली प्रतिमाएँ नहीं हैं।

इसके साथ नाटक की मर्यादाएँ भी स्पष्ट हैं। उर्वशी के प्रेम का दण्ड और अवधि पुरुष-सत्ताएँ निर्धारित करती हैं; औशीनरी से पति की दूसरी प्रेयसी को स्वीकारने की अपेक्षा की जाती है; पुत्र राजवंश की निरंतरता का माध्यम बनते ही उर्वशी का मातृत्व सार्वजनिक मान्यता पाता है। सुखांत भी इन्द्र के अनुग्रह पर निर्भर है। इस दृष्टि से नाटक पितृसत्तात्मक संरचना को विघटित नहीं करता, पर उसके भीतर स्त्री की पीड़ा, मान और इच्छा को इतना सजीव बनाता है कि व्यवस्था की असमानता स्वयं दृश्य हो उठती है।

निष्कर्ष

'विक्रमोर्वशीयम्' का नारी-चित्रण बहुस्तरीय और अंतर्विरोधपूर्ण है। उर्वशी अलौकिक सौंदर्य की अप्सरा होते हुए भी प्रेम के कारण मानवीय संवेदनाओं में प्रवेश करती है। उसका अभिनय-विचलन निजी सत्य की सार्वजनिक घोषणा है; भूर्जपत्र उसकी प्रेम-स्वीकृति; ईर्ष्या उसका अधिकार-बोध; लता-रूपान्तरण उसकी वाणी पर व्यवस्था का दण्ड; और आयु का गोपन प्रेम तथा मातृत्व के बीच उसकी

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976 -5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

असह्य विवशता। औशीनरी का चरित्र राजमहल की पत्नी के आहत गौरव को वाणी देता है। उसका व्रत उदारता का शिखर है, पर उसी के भीतर बहुपत्नी व्यवस्था का स्त्री-विरोधी भार भी दिखाई देता है।

चित्रलेखा, निपुणिका और सत्यवती नाटक में स्त्री-सहयोग, गोपनीयता, संरक्षण और पालन की अपरिहार्य भूमिकाएँ निभाती हैं। इस प्रकार स्त्री-अनुभव केवल नायिका तक सीमित नहीं रहता। कालिदास की रचना नारी को एक साथ कलाकार, प्रेयसी, पत्नी, सखी और माता के रूप में देखती है। यद्यपि अंतिम अधिकार देवता, गुरु और राजा के पास बना रहता है, स्त्री की इच्छा और पीड़ा कथानक का नैतिक केंद्र बन जाती है। यही 'विक्रमोर्वशीयम्' की स्थायी उपलब्धि है: वह नारी को रूप-सौंदर्य की प्रतिमा से आगे ले जाकर प्रेम, स्मृति, प्रतिरोध और संबंधों की अर्थनिर्मात्री शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

संदर्भ

1. कालिदास, विक्रमोर्वशीयम्, एम. आर. काले, संपा., दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 3रा पुनर्मुद्रित संस्करण, 2012।
2. विश्वबन्धु, संपा., ऋग्वेदः: स्कन्दस्वामी, उद्गीथ, वेङ्कटमाधव और मुद्गल के भाष्यों सहित, 8 खंड, होशियारपुर: विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, 1965।
3. जूलियस एगेलिंग, अनु., शतपथ ब्राह्मण, भाग 5, पुस्तक 11–14, सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, खंड 44, ऑक्सफोर्ड: क्लैरेंडन प्रेस, 1900।
4. जे. सी. राइट, 'पुरूरवस् एंड उर्वशी,' बुलेटिन ऑफ द स्कूल ऑफ ओरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज, खंड 30, अंक 3, पृ. 526–547, 1967।
5. आर. सी. गौर, 'द लेजेन्ड ऑफ पुरूरवस् एंड उर्वशी: एन इंटरप्रिटेशन,' जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, खंड 106, अंक 2, पृ. 142–152, 1974।
6. कालिदास, हाउ उर्वशी वॉज वन, वेलचेरु नारायण राव और डेविड शुल्मन, अनु., न्यूयॉर्क: न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी प्रेस तथा जे. जे. सी. फाउण्डेशन, 2009।
7. बारबरा स्टोलर मिलर, संपा., थिएटर ऑफ मेमरी: द प्लेज ऑफ कालिदास, न्यूयॉर्क: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1984।
8. के. कृष्णमूर्ति, कालिदास, नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी, पुनर्मुद्रित संस्करण, 1994।
9. ए. बी. कीथ, द संस्कृत ड्रामा: इन इट्स ओरिजिन, डेवलपमेंट, थ्योरी एंड प्रैक्टिस, लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1924।
10. बारबरा फास लीवी, इन सर्च ऑफ द स्वान मेडन: ए नैरेटिव ऑन फोकलोर एंड जेंडर, न्यूयॉर्क: न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994।
11. राम वी. बक्शी, 'कालिदासाज प्लेज: रिचुअल्स ऑफ ह्यूमन परफेक्शन,' जर्नल ऑफ साउथ एशियन लिटरेचर, खंड 10, अंक 2–4, पृ. 45–49, 1975।

© Copyright @ Authors